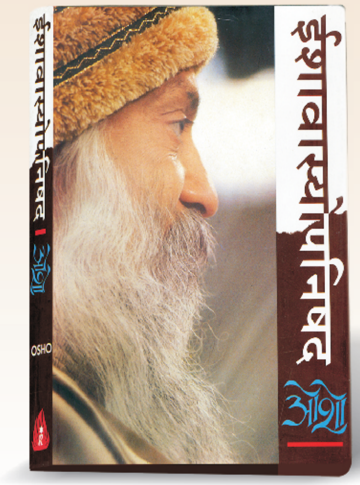

ईशावस्योपनिषद

ओशो का संदेश अस्तित्व की अभिव्यक्ति है। संसार का ऐसा कोई भी दर्शन, धर्म, संप्रदाय नहीं जहां उनकी सूक्ष्म दृष्टि न गई हो। कृष्ण, बुद्ध, महावीर से लेकर गीता, उपनिषद् तक उनकी चर्चा के विषय रहे हैं।

ऊँ शांति, शांति, शांति। यह महावाक्य कई अर्थों में अनूठा है। जिसने इसे समझ लिया उसको और किसी वचन की जरूरत नहीं है। 'ईशावस्य' उपनिषद् इस वाक्य से शुरू होता है और पूरा होता है।

'ईशावस्य' उपनिषद् की आधारभूत घोषणा है 'सब कुछ परमात्मा का है।' इसीलिए इसका नाम 'ईशावस्य' रखा गया है। पूरे जीवन हम इसी भ्रांति में जीते हैं कि सब कुछ हमारा है। मालकियत, स्वामित्व—मेरा है। ईश्वर का है सब कुछ, तो फिर मेरे मैं को खड़े होने की कोई जगह नहीं रह जाती।

अहंकार भी निर्मित होने के लिए आधार चाहता है। मैं को भी खड़ा होने के लिए मेरे का सहारा चाहिए। मेरे का सहारा न हो तो मैं को निर्मित करना असंभव है।

साधारणतः देखने पर लगता है कि मैं पहले, मेरा बाद में है। लेकिन वास्तव में मेरा पहले निर्मित करना होता है, तब उसके बीच में मैं का भवन निर्मित होता है।

'ईशावस्य' की पहली घोषणा मैं निर्मिति पूरे मकान को गिरा देने वाली है। सब कुछ परमात्मा का है। और सभी कार्य उसी के आदेश पर हो रहा है।

ओशो कहते है—विज्ञान के बजाए—'ईशावस्य' की घोषणा ज्यादा कीमती है। इधर आपकी टिमटिमाती छोटी सी ज्योति को बुझाता है, दूसरी तरफ महासूर्य को जन्म दे जाता है। 'ईशावस्य' को यहां समझना जरूरी है। एक तरफ कहता है, तुम नहीं हो और दूसरी तरफ से तत्काल तुम्हें परमात्मा की स्थिति में स्थापित कर जाता है। एक तरफ से तुम्हें छीन लेता है, मिटा देता है और दूसरी तरफ से तुम्हें पूर्ण को दे जाता है। इसीलिए अहंकार रूपी मिट्टी के दीए और मिट्टी के तेल में जलती हुई धुंधयारी ज्योति को तो बुझा देता है—जहां धुआं भी था, बास भी थी—और सूरज के आलोक को दे जाता है। मिटाता है मैं को, लेकिन परम मैं को प्रतिष्ठा दे जाता है।

धर्म और विज्ञान के मूल आयाम में यही भेद है। विज्ञान भी उन्हीं बातों को कह रहा है जिन्हें धर्म कहता है। लेकिन उसका ज्यादा दवाब यंत्र पर है, वहीं धर्म का ज्यादा जोर चेतना, प्रज्ञा, जीवंत पर है।

'ईशावस्य' ने कर्म के लिए कहा है—सब प्रभु को अर्पित करके जीना। सब उसके ही चरणों में छोड़ देना। सब उसको ही समर्पित कर देना। स्वयं के कर्ता का समस्त भाव छोड़कर कर्मों से जो गुजरने को राजी है, उसे इस संसार में कर्म का कोई लेप नहीं होता है। एक ही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है, जहां कर्म का लेप नहीं है।

एक तो संसार में जीना और कर्म से लिप्त न होना बड़ी ही कीमिया, बुद्धिमता, विज़डम की बात है। करीब-करीब ऐसे ही है, जैसे कोई काजल की कोठरी से निकले और उसे काजल न लगे।

अस्तित्व का प्रगट रूप है—प्रकृति। जो दिखाई पड़ता है आखों से, हाथों से स्पर्श में आता है, इंद्रियां जिसे पहचान पाती हैं, इंद्रियों को जिसकी प्रत्यभिज्ञा होती है। अर्थात् जो दृश्यमान परमात्मा है, वह प्रकृति है। लेकिन यह तो उनका अनुभव है, जिन्होंने परमात्मा को जाना। वे कहेंगे कि परमात्मा का शरीर प्रकृति है। लेकिन हम तो केवल शरीर को ही जानते हैं। वह परमात्मा का है शरीर। वह जो अप्रगट चैतन्य है, उसकी ही आकृति है प्रकृति, उसका ही प्रगट रूप है। हमारा जानना तो इतना ही है कि जो यह प्रगट है, यही सब कुछ है।

ओशो कहते हैं—जीवन का शाश्वत नियम है, प्रारंभ जहां से होता है, परिणति वहीं होती है। जो है आदि, वही अंत है। जीवन के इसी शाश्वत नियम के अंतर्गत ईशावस्य जिस सूत्र से शुरू होता है, उसी सूत्र पर पूर्ण होता है। सभी यात्राएं वर्तुल में हैं। पहला कदम आखिरी कदम भी है। ऊँ शांति, शांति, शांति।

—यह पुस्तक ओशो वर्ल्ड गैलेरिया में उपलब्ध है